समस्याएँ अनंत : कथा अनंता

(किसान जीवन की त्रासदी'अगम बहै दरियाव' के विशेष संदर्भ में)

डॉ. नीलाभ कुमार

स्वामी आत्मानंद शासकीय अंग्रेजी माध्यम आदर्श महाविद्यालय अम्बिकापुर, जिला-सरगुजा, पिन: 497001 (छत्तीसगढ़)

ई मेल :kumarneelabh81@gmail.com

मो-9644212029

दरिया के बहाव को किसी ने रोक पाया है? एक अविरल, प्रशांत, पर अपने भीतर अनेक अंगड़ाइयों को समोये दरिया अपने बहाव से हमें अपना परिचित-अपरिचित चेहरा लिए हमेशा हमारे सामने खड़ा दिखाई देता है। इसकी हलचलें शांत, प्रशांत, धीरता और गंभीरता को कंपायमान कर देती है। इस कंपन में अनेक मूल्य-बहुमूल्य पदार्थ हमारे बीच नमूदार हो आते हैं। इसकी नमूदारता भले दिखाई दे, पर वह मनुष्य की पकड़ से बाहर ही होता है। दरिया में जब भीतरी उफान आता है तो वह ऊपर की सारी परतों को, सारी हदों को सुंदरता और कुरुपता सबको जैसे एक ही झटके में मालिन्य कर देता है। 'अगम बहै दरियाव' की मालिन्यता अचानक से, एक झटके से निर्मिति नहीं पायी है, बल्कि यह बरसों-बरस का बहता नीर है जो हमारे किसान भाइयों को न सिर्फ आप्लावित किए जा रहा है, वरन उस आप्लावन में किसान भाई डूबते-उतराते, अपनी नेकनीयति और भलमनसाहत से आजिज़ आते, सरकारी हथकंडों का शिकार होते अपने जीवन रक्षा में लगे रहने के बावजूद अपनी दो-जून की रोटी के लिए मशक्कत करने वाली जिंदगी के साथ हमारे सामने नमूदार होते हैं। किसानों की इस दयनीय स्थिति से हमारा परिचय उपन्यास आद्यांत करता दिखाई देता है। उपन्यासकार इस बात को रेखांकित करते हुए लिखते हैं- "बाबा, किसान और बैल की किस्मत में मरने के दिन तक खटना लिखा रहता है। भगवान ही इनको पेंशन देते हैं, अपने पास बुलाकर।" (पृष्ठ-31)(1)। उपन्यास का यह वाक्य जैसे इस बात की इत्तिला करता जान पड़ता है कि किसानों की समस्याओं का इहलोक में अंबार होता है, उस अंबार का अंत परलोक में ही संभव है। मतलब साफ है कि किसानों की स्थिति में सुधार के नाम पर चाहे जितना भी प्रयत्न करने का दिखावा किया जाए, उसके जीवन में उसकी समस्याओं का अंत नहीं दिखाई देता है। उपन्यास 'अगम बहै दरियाव' किसानों की ऐसी ही अंत न होनेवाली समस्याओं की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। एक ओर किसानों की न खत्म होनेवाली समस्याएँ हैं, तो दूसरी ओर वह बनिया बुद्धि के लोग भी हैं जो पूँजी की राजनीति को पूंजीवादी शक्तियों के उभार के रूप से हमारा परिचय कराता है। यह बनिया बुद्धि किसी खास जाति के लोगों की

अब थाती नहीं रह गई है, बल्कि इसका प्रसार पूँजी के छल-छद्म से जुड़े हरेक उस वर्ग के लोगों तक है जिसने अपनी बुद्धि से पूँजी की राजनीति को अपने वश में कर लिया है। "फायदा तो छत्रधारी जैसे बनिया बुद्धि के लोग ही जानते हैं। समय आ रहा है कि सड़क के किनारे की जमीन फुट के रेट से बिकेगी। दस गुने बीस गुने महँगे रेट से।"(2) (उक्त, पृष्ठ-33) । हरियश राय के उपन्यास 'माटी राग' में इस बात का उल्लेख दिखाई देता है कि फैक्ट्रियां लगाए जाने के नाम पर जंगलों को तबाह किया जा रहा है, तो किसानों की जमीनें भी हड़पने की साज़िश साथ-साथ चल रही हैं। यह ऐसी कोशिश है, जिसमें किसान पीसते चले जा रहे हैं। "नहीं साब, सरकार सिर्फ बड़े सेठन की फायदा की योजनाएं बनावत है। सरकार तो किसानन कौ लूटन की पूरी छूट दे रही है। इन सेठन को और जे सेठ हमें लूट रहे हैं कोई रोकने वालो नहीं है।"(3) (हरियश राय- 'माटी-राग', वाणी प्रकाशन, पेपरबैक पहला संस्करण-2024,पृष्ठ संख्या- 169)।

किसानों की समस्याएँ अनंत हैं। समस्याओं में एक समस्या उनके पलायन की भी है। यह पलायन स्वेच्छा से नहीं है, बल्कि उसकी विवशता है जिसकी वजह से वह अपने दो-जून की रोटी खातिर घर छोड़कर बाहर जाता है। किसानों का एक बड़ा वर्ग है, जिसके पास अब खेती बहुत कम रह गई है। सीमांत किसान लगातार इस स्थिति से दो-चार हो रहे हैं, विवशता उनका साये की तरह पीछा छोड़ने का नाम नहीं ले रही है। इस विवशता की वजह से वे अपने घर से पलायन करते दिखाई दे रहे हैं। खेतों का रकबा कुछ खास किसानों तक सीमित रह गया है, जो किसी तरह से अपनी दुर्दशा को दशा में तब्दील करते प्रयासरत दिखाई देते हैं, वे घर से पलायन न करने की जिद्द भी गोया किए बैठे हैं कि उनके पास जमीन का कुछ टुकड़ा है। यह बात दीगर है कि उस जमीन से चिपटे रहने की उनकी आकांक्षा भले ही फलीभूत होती दिखाई देने का भ्रम पैदा कर रही हो, पर वास्तव में उनका जीवन अनेक समस्याओं से ग्रसित है। जिन अधिकांश किसानों के पास जमीनें नहीं हैं, वे किसान घर से पलायन करते अपने जीवन रूपी गाड़ी को ठेलम-ठेल लिए चलते रहने के रूप में हमारे सामने खड़े दिखाई देते हैं। ऐसे किसानों के पास "खेती बहुत कम थी। परदेस जाकर कमाने के अलावा और कोई चारा नहीं था।"(4) ('अगम बहै दरियाव' से,पृष्ठ 40) ।

उपन्यास अपने कलेवर में एक बड़े फ़लक को अपनी कथावस्तु में जगह देता है। अंग्रेजों के शासनकाल में जमींदारों के दहशतों, उनके द्वारा किसानों के बेपनाह शोषणों को जगह देता हुआ उपन्यास उदारीकरण से ऊपजी स्थितियों में किसानों की दुर्दशा तक का वर्णन करता दिखाई देता है। "बाबा बताते थे कि चार-छः रूपये ही देना होता था, लेकिन इतनी छोटी रकम भी नहीं जुटती थी। गाली-गुफ़्ता, मारपीट सुनना-सहना पड़ता था। वह जमींदारी का जमाना था। आज इतने दिनों बाद भी किसान की जिंदगी में बहुत कुछ नहीं बदला।"(5) (उक्त,पृष्ठ-363)। बदलने की यह आकांक्षा सकारात्मकता की है। बदलाव तो हुए हैं, पर उस बदलाव में बहुत कुछ नकारात्मकता ही दिखाई देती है। किसानों के जीवन में यह नकारात्मकता

आद्यांत दिखाई देती है। कान इस आस में अपनी संवेदनाओं को खोले रहते हैं कि कहीं से कोई ऐसी ख़बर भी आए जो कानों को प्रिय लगे। लेकिन प्रिय की यह आस जैसे आस ही बनी रह जाती है या कहें कि यह आस निराशा में तब्दील होती जाती है। "नया वर्ष शुरू होने के ठीक पहले गन्ना किसानों के लिए एक बुरी ख़बर आई।"(6) (उक्त,पृष्ठ-498)। सवाल यह है कि किसानों के लिए अच्छी ख़बर आती कब है? संजीव के उपन्यास 'फांस' तथा हरियश राय के उपन्यास 'माटी-राग' में इस बात का उल्लेख मिलता है कि किसान से बेहतर जिंदगी एक सरकारी मजदूर जी रहा है। "मामूली बात है। एक किसान मर गया और एक प्यून जिंदा हो गया। तुमने भी तो अपनी बेटी उमा की शादी किसान से नहीं, मजदूर से की। क्यों की? इसलिए न कि किसानी का मतलब है मौत।"(7) (संजीव- 'फांस', वाणी प्रकाशन, द्वितीय संस्करण -2016, पृष्ठ संख्या- 44)। गीतांजलि श्री के उपन्यास 'रेत समाधि' में भी इस बात का उल्लेख मिलता है कि "सरकारी विभाग सबकी तड़प और तलब। चपरासी, कांस्टेबल, टाइप बाबू, ड्राइवर, माली कुछ बना दो, पर सरकारी दफ्तर में। फिर जीवन भर चैन की सांस लें।"(8) (गीतांजलि श्री- 'रेत समाधि', राजकमल प्रकाशन, पेपरबैक नौवां संस्करण, जून-2022, पृष्ठ संख्या- 56)।

किसानों की परेशानी को पूंजीवादी शक्तियों के उभार और पूँजी की राजनीति ने जैसे और भी अधिक बढ़ा दिया था। पूँजी की शक्तियों के प्रसार ने सामानों में मिलावट को एक तीखा रूप देने का काम किया है। इस मिलावट में इस बात की तनिक चिंता नहीं की जा रही है कि इससे किसी की जान को खतरा भी हो सकता है। मिलावट का एकमात्र उद्देश्य मुनाफा से जुड़ा है। इस मुनाफा खातिर किसी दूसरे को चाहे जिस तरह का नुकसान झेलना पड़े पूंजीवादी शक्तियों को इससे कोई लेना-देना नहीं है। कहा जाए कि इसे और अधिक बढ़ावा दिए जाने के लिए ये पूंजीवादी शक्तियाँ अधिक प्रयत्नशील दिखाई दे रही हैं। "सेठ ने नकली डाई बेची थी। बोरी में डाई के साथ उड़द के आकार के पत्थर के गोल दाने मिलाए गए थे। सबसे महँगी खाद होती है डाई। उसके बदले नकद खरीदकर हमने अपने खेत में पत्थर बोये थे।"(9) ('अगम बहै दरियाव', पृष्ठ-89)। पूंजीवादी शक्तियों के उभार और पूँजी की राजनीति में मिलावट का एक दिलचस्प मामला है। यह सबकुछ नहीं है। इस मिलावट के रंग बहुतेरे हैं। यह कभी जातिवाद का रूप धरती है, तो कभी सांप्रदायिकता का। यह कभी लोगों को आपस में लड़ा देती है, तो कभी जातियों का गठबंधन करके या धार्मिक उन्माद फैलाकर भी लोगों को आपस में लड़ाने का काम करती है। इसके मूल में अपना हित-लाभ है, जो किसी भी रूप में बनाए रखने के लिए पूंजीवादी शक्ति दृढ़प्रतिज्ञ दिखाई देती है। कहा जाए कि यह मायाविनी है, जो नाना रूप धारण करके हमें ठगने का काम करती है। यह अपना पैर भी पसारती नजर आती है। अपने मायाजाल से जहाँ लोगों को आक्रांत करती है, तो अपने छद्म को पसारने के लिए दूसरे लोगों को अपनी जद में भी लेती है। "सच पूछिए तो असली ठाकुर करिया सिंह ही हैं। छत्रधारी सिंह तो भट्ठा खोलने के बाद पूरे बनिया हो गए।"(10) (उक्त,पृष्ठ-340)।

एक बड़ा वाजिब सवाल, जो उपन्यास 'अगम बहै दरियाव' उठाता है कि "क्या अपनी दुर्दशा के लिए किसान खुद ही जिम्मेदार हैं?"(11) (उक्त, पृष्ठ-443)। इस सवाल का उत्तर यों तो उपन्यास का मूल मंतव्य है जिसपर आगे विचार किया जाएगा। अगली पंक्ति में जो उत्तर दिया गया है, वह दुविधा की स्थिति से उत्पन्न होता है। यह दुविधा ही है जो किसानों का आज तक पीछा नहीं छोड़ रही और किसान अपनी मर्मांतक पीड़ा से आज भी ग्रस्त नजर आते हैं। "खुद ही तो नहीं कह सकते, लेकिन काफी कुछ खुद भी जिम्मेदार हैं।"(12) (उक्त, पृष्ठ-443)। किसानों की दयनीय स्थिति के लिए स्वयं को ही जिम्मेदार मानने का मतलब यह भी नहीं है कि लोकतांत्रिक सरकार की कोई जिम्मेदारी नहीं बनती है। जिस किसान से सबों को भोजन उपलब्ध होता है, उसी किसान की बेदर्दी पर बेदर्द हो जाना प्रकारांतर से पूरी सरकारी व्यवस्था को कठघरे में ला खड़ा करती है। सरकार की जिम्मेदारी क्या बनती है? क्यों सरकार अपने किसानों पर ध्यान नहीं देना चाहती? क्यों किसानों के साथ सौतेला व्यवहार किया जाता है? जो किसान अपना तन, मन सबकुछ भूलाकर सबों के लिए अनाज मुहैया कराने में जुटा होता है, उसी किसान के साथ ऐसा सौतेला व्यवहार क्यों किया जाता है? क्यों किसानी को घाटे का ही पेशा बना दिया गया है? यह ऐसा घाटा है जो जन्म-जन्मांतर से बना हुआ है। यह समाप्त होने का नाम नहीं ले रहा है। यह तो फसलों की हरियाली है जिसे देखकर किसान का मन अघाए बिना ही कुछ समय के लिए हरिया जाता है, लेकिन उसकी हरियाहट में ही कहीं आंतरिक मुरझाहट की आहट छुपी होती है। यह आहट ही है जो किसानों को भीतर तक कुरेदती रहती है। उसे जन्म-जन्मांतर तक विघ्न-बाधाओं से उसका परिचय कराती चलती है। वह उबरना चाहकर भी नहीं उबर पा रहा हैI इसके जद में हमारी लोकतांत्रिक सरकारी व्यवस्था की नाकामी भी महत्वपूर्ण जान पड़ती हैI क्यों नहीं सरकार ऐसी नीतियाँ बनाती है जिससे किसानों को वाजिब हक़ मिल सके? फसलों के वाजिब दाम मिलेI मूल्यों का निर्धारण लागत मूल्य के आधार पर किया जाएI "पैदावार के लिए किए गए खर्च और मेहनत की तुलना पैदा हुए अनाज की कीमत से करिए तो वही ढाक के तीन पातI अब वे भी मान गए हैं कि चाहे जितना हाथ-पैर फेंकिए, किसानी के पेशे में बरकत नहीं होने वालीI"(13) (उक्त, पृष्ठ-535)I "वैसे तो किसानों की समस्याएं अनंत हैं- बिजली न मिलने की, पानी न मिलने की, खाद न मिलने की, गन्ने का बकाया न मिलने की, अनाज की सही कीमत न मिलने की, लेकिन यह सनातन समस्याएं हैं और किसान इनका आदी हो गया हैI"(14) (उक्त, पृष्ठ-417)I एक लोकतांत्रिक सरकार यदि किसानों की समस्याओं का रहबर नहीं हो सकती तो इससे विडंबनात्मक स्थिति और क्या हो सकती है? 'माटी-राग' में उपन्यासकार ने किसानों की इन समस्याओं का बड़ी बारीकी से चित्रण किया है। "इन आढ़तियों ने किसानों के चारों तरफ एक जाल बुन दिया है। एक सिस्टम बन गया है जिसमें किसानों को तो हर हाल में लुटना ही है।"(15) ('माटी-राग', पृष्ठ संख्या- 153)। किसानों की अनंत समस्याओं के बीच उपन्यासकार शिवमूर्ति की नजर में इन समस्याओं के हल न होने की एक बड़ी वजह जातिवाद का वह जहर है, जो कदम-कदम पर किसानों को डसे जा रहा हैI

'अगम बहै दरियाव' किसानों की समस्याओं को मूल में रखते हुए अपने व्यापक परिदृश्य में अनेक ऐसी स्थितियों का जिक्र करता दिखाई देता है, जो किसी-न-किसी रूप में मानवीय चिंता और चिंतन से हमारा परिचय कराता हैI ये ऐसे चिंता और चिंतन की समस्याएं हैं, जिनसे मनुष्य अपनी रोजमर्रा के जीवन में आहत-हताहत होता दीख जाता हैI ये आहत-हताहत के क्षण ऐसे हैं, जो न सिर्फ किसानों की समस्याओं से किसी-न-किसी रूप में जुड़े हैं, बल्कि मानव जीवन की शृंखला से वह पूरी तरह जुड़ी दिखाई देती हैI एक तरफ उपन्यासकार मनुष्य होने और उसके जीवन जीने की चिंता से मुतवज्जेह होते दिखाई देते हैं, तो दूसरी तरफ छत्रधारी सिंह जैसे सामंती ठसक वाले लोगों द्वारा किए जाने वाले छल-प्रपंच का भी चित्रण करते दिखाई देते हैंI छल-प्रपंच का चित्र खींचा गया है, उसके बरक्स भूसी की खुद्दारी भी दिखाई देती है, तो कानून की बची रहे मर्यादा- इसकी चिंता भी हमारे सामने नमूदार होती हैI विकास के नाम पर मनुष्य न जाने अपने जीवन को ही क्यों लगातार प्रश्नांकित किये जा रहा है-यह बड़ा विचारणीय हैI पहाड़ों का लगातार क्षरित होते जाना, नदियों से पानी का स्तर लगातार गायब होते जाना, पेड़ों की बेहिसाब कटाई आदि ऐसी दुर्घटनाएं हैं, जिनसे मनुष्य लगातार बावस्ता होता चल रहा है, पर वह जाने-अनजाने इनके ह्रास को न रोके जाने में लगातार मशगूल भी होता दीख रहा हैI गाँव से पलायन, सरकारी योजनाओं में दबंगों और दलालों की दखलंदाजी, समाज में फैले अन्धविश्वास का चित्रण, आम आदमी के हर जगह सताए और किसी-न-किसी रूप में हरेक दिन मारे जाने की घटना-दुर्घटना से हमारा परिचय कराता यह उपन्यास मनुष्य की चिंता से हमें बावस्ता कराता चलता हैI आपातकाल का चित्रण करता यह उपन्यास लोगों को जबरन नसबंदी के लिए मजबूर किया जाना उपन्यास की एक महत्वपूर्ण घटना-प्रसंग के रूप में पाठकों को याद दिलाता चलता हैI नसबंदी एक ऐसी घटना-दुर्घटना थी जिनसे न जाने कितने लोग अनजाने, मजबूरन परेशान हुएI घर-के घर तबाह हुएI भ्रष्ट सरकारी तंत्र जिसके सामने मनुष्य न चाहते हुए भी कहीं-न-कहीं झुकने को विवश हो जाता हैI मानवीय अकाल, कालाबाजारी, दो मुँहे लोग, जो पीठ पीछे कुछ और मुँह पर कुछ बोलते हैं और अपना उल्लू सीधा करने के लिए किसी भी हद तक जाने को तैयार होते दीख जाते हैं- ऐसे लोगों से प्रकारांतर से सावधान हो जाने की भी उपन्यास इत्तिला देता जान पड़ता हैI 'इज्जत', 'मरजाद', मूल्यों के क्षरण का सवाल जब उपन्यास उठाता है, तो यह सवाल सहजतया मन में आ जाता है कि क्या 'गोदान' का 'मरजाद' आज सुरक्षित नहीं रह गया है? इन तमाम सवालातों से जूझ रहे मनुष्य के अनेक चेहरे के बीच एक बात जो दीपक की लौ को कहीं किसी कोने-अंतरे में रखी हुई जान पड़ रही है कि कानून से ऊपर कोई नहीं हैI यह बात दीगर है कि कानून के भी हाथ रसूख़ के सामने कभी-कभी बौने होते दीख जाते हैंI लेकिन यह भी महत्वपूर्ण बात हमारे सामने आती है कि स्थितियों के विपरीत होते चले जाने के बावजूद आज भी कानून की कहीं-न-कहीं कोई मर्यादा बची हुई है, जिसके तार हम मनुष्यों से जुड़े दिखाई देते हैंI राजनीतिक पार्टियों में कार्यकर्ताओं की उपेक्षा, जो आज आम बात हो गयी है, नफ़रत के भाव, बाहुबली नेताओं के बुरे होते चले जाने वाले हाल का चित्रण करता

उपन्यास हमें उपेक्षाओं, विपत्तियों के बीच एक सुखद एहसास की तरह भी लगता है। ताउम्र दूसरों को लड़ाने वाले अंततः अपने द्वारा बनाए गए जाल में उलझ जाने की घटना, राजनीति में 'नोटों' का दम, पुलिसिया डंडा, आदमी को आदमी समझे जाने की चिंता उपन्यास की एक वाजिब चिंता के रूप से हमारा परिचय कराता है। कथित उच्चवर्गीय ठसक का अवश्यंभावी अंत की कामना उपन्यास और उपन्यासकार दोनों की वैचारिकी, जो आम आदमी के पक्ष में खड़ा है-से हमारा परिचय कराता जान पड़ता है। मजदूरों के लिए रोजगार की चिंता को सबसे बड़ी चिंता के रूप में उपन्यासकार ने देखा है। हम तो कहते हैं कि मजदूर तो क्या हरेक उस व्यक्ति के लिए रोजगार की चाह रखता है, उसकी सबसे बड़ी चिंता रोजगार न मिल पाने की ही रहती है। खासकर युवा वर्ग इस परेशानी से अधिक आहत होता आज दीख रहा है । जिस मात्रा में रोजगार चाहिए, उस मात्रा में रोजगार की उपलब्धता न हो पाने की वजह से बेरोजगारों का गाँव से शहर की ओर पलायन के रूप में चीजें दिखाई देने लगी हैं। शहरों में पलायन की एक बड़ी वजह बेरोजगार युवाओं का रोजगार की तलाश में शहरों में बस जाने से उत्पन्न हुई है। उपन्यास जिस मार्क्सीय वैचारिकी को गढ़ता दिखाई देता है, उसमें ईश्वर को अपने हित लाभ में गढ़े जाने की परिघटना को उद्घाटित किए जाने से बनती दिखाई देती है। एक सवाल जो अनुत्तरित सरीखा ही है कि ईश्वर ने मनुष्य को गढ़ा या मनुष्य ने अपने हित लाभ के लिए ईश्वर को सिरजा? धर्म का मामला एक ऐसा संवेदनशील मसला है जिसकी ओट में मनुष्य अपनी सभी मुख्य-प्रमुख घटना को भूलकर उसमें डूब जाने की स्थिति में हो गया दिखाई देता है। न्यायालयीन फैसलों के अंतर्विरोध को जिस तरह से उपन्यास ने उठाया है, वह आए दिन की न्यायालयीन फैसलों को देखने-समझने के बाद और भी अधिक पुख्ता जान पड़ता है। राजनीतिकों द्वारा चुनाव जीतने के लिए जिन हथकंडों का इस्तेमाल किया जा रहा है, उससे चुनाव प्रक्रिया में किसी भले मानुष का हाथ आजमाना सोच से परे जान पड़ता दिखाई देने लगा है। उपन्यासकार ने जिस तरह से दलितों की सामूहिक हत्या की बात को जगह दी है, वह रोंगटे खड़ी करने वाली जान पड़ती है।

समय में आए परिवर्तनों में से एक महत्वपूर्ण परिवर्तन एकल पारिवारिक व्यवस्था को बढ़ावा मिलने की है। यह बदलाव अचानक से नहीं आया है। इसके पैर पसारते चले जाने की एक बड़ी वजह जो दिखाई देती है, वह युवा वर्ग का रोजी-रोजगार की तलाश में घर से बाहर निकलना है। उपन्यासकार ने समूह का दिल जीतने की कला को प्रकारांतर से गाँधी जी से सीखने को याद किया है। उस घटना को उपन्यास में जगह दी गयी है जिसमें विद्रोही जी महेंद्र सिंह टिकैत द्वारा आहूत धरने में शामिल होकर गाँव वापस लौटे हैं और उसका लोगों के बीच बखान करते दिखाये गये हैं। समूह को इकठ्ठा करने की जो शक्ति गाँधी जी के पास दिखाई देती है, वह भारतीय राजनीति में अनुपम है। उपन्यास में फगुआ का चित्रण रेणु के 'मैला आँचल' की याद दिला जाता है। बारह बजे रात तक ढोल की थपक से आदमी के मन में पैदा हुई थिरकन ने जैसे वसंत के उछाह की समां बंध जाती है। यहीं उपन्यास में व्यवहृत

भाषाई संजीदगी भी ध्यान में हो आती हैI घर के अंदर से माठा मथने की घलर-घलर की आवाज हो या किसी मेढ़क के नदी में लगाने वाली छलांग हो या मछली के उछलने से भंग होने वाली नीरवता हो-इन सारे पहलुओं ने जैसे भाषाई संजीदगी को और अधिक मुखरित ही किया हैI सरकारी कार्यों में कमीशनखोरी, शिक्षा माफियाओं का शिक्षा के लिए रचा जाने वाला षड्यंत्र, पीढ़ियों की सोच में आए परिवर्तन से स्थितियों में होने वाले परिवर्तन, बाजार में परोसे जाने वाले छल-छद्म से आहत होता जन-समुदाय, फिर भी उसी बाज़ार के गिरफ्त में समोते चले जाने के लिए विवश होता आम जन, फींके पड़ते त्योहारों की छौंक, महंगाई से त्रस्त आम जन, फिर भी धर्म के नाम पर अपना 'ब्रेनवॉश' किया जाता देखकर उसके प्रतिकार में जैसे आवाज को कहीं कोने-अंतरे में छुपा देने की न जाने कैसी विवशता पाले सामान्य जन को उपन्यास में जगह दी गयी हैI नियम-कानून सामान्य जन के लिए बनाए तो जाते हैं, पर सामान्य जन उसके हित-लाभ से कोसों दूर खड़ा दिखाई देता है- की आवाज उपन्यास के विस्तृत फलक से पाठकों का ध्यान आकृष्ट करता दिखाई देता हैI

आम जन की माली स्थिति से उबार की ओर भी हमारा ध्यान उपन्यास खींचता हैI इस संबंध में उपन्यासकार ने शिक्षा को सबसे बेहतर औज़ार के रूप में इस्तेमाल किए जाने की जरूरत के रूप में देखे जाने की ताकीद की हैI एक ऐसा वर्ग रहा है जो शोषितों को शोषण के शिकार बनाये जाते रहने के पक्ष में ही दिखाई देता हैI वह वर्ग यही चाहता है कि बनी-बनायी, एक लीक पर चलती रहने वाली, शोषण को बढ़ावा देने वाली परंपरा ज्यों-का-त्यों बनी रहेI उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन या कोई सुधार की बात उन्हें विचलित करने लगती हैI इसी सोच का नतीजा है कि उपन्यास में "मुख़्तार साहब तो चाहते थे कि जंगू भी उन्हीं के घर में रहेI जानवरों को चरा लाए और खेती-बारी के काम में मदद करेI लेकिन गजाधर बहू राजी नहीं हुईंI जंगू के बप्पा जंगू को पढ़ाना चाहते थेI वे उसकी पढ़ाई नहीं बंद करा सकतीं"(16) ('अगम बहै दरियाव', पृष्ठ-129)I हमारे देश में युवाओं को दी जाने वाली शिक्षा सवालिया निशान के घेरे में रही है और आज भी दिखाई देती है। क्या हमारे युवा ज्ञान की जगह सूचनात्मक ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं? उपन्यास 'फांस' में चाचा पाटिल विजयेंद्र को यह कहते हुए तंज कसते हैं कि "कलम से खेत नहीं जोते जाते बिज्जू। छोड़ो।"(17) ('फांस', पृष्ठ संख्या-74)।एक ओर मुख़्तार साहब बनी-बनायी लीक को पीटते रहने के लिए आतुर दिखाई दे रहे हैं और अपने स्वार्थ में लिप्त नजर आ रहे हैं, तो दूसरी ओर गजाधर बहू जैसी सोच की स्त्री भी दिखाई दे रही हैं, जो मुख़्तार साहब जैसे लोगों की सोच को बनाए रखने के पक्ष में नहीं दिखाई देती हैंI वह चाहती हैं कि उस बनी-बनायी सोच में टूटन पैदा हो और उस टूटन की प्रतिच्छवि वह स्वयं भले न गढ़ पाई हों, पर अपनी संतान में उस छवि को गढ़े जाने की आकांक्षी अवश्य दिखाई दे रही हैंI यह एक सकारात्मक पहलू है जो शिक्षा के माध्यम से विस्तारित किए जाने की आकांक्षी दिखाई देती हैI यह आकांक्षा लोगों को शिक्षित करने के साथ-साथ उसे संगठित होने की ओर भी अग्रसर हो सकेगी-यह आकांक्षा एक

सकारात्मक आकांक्षा के रूप में हमारे सामने नमूदार होती हैI इस संगठित होने की आकांक्षा शिक्षा रूपी बिरवे से ही पुष्पित-पल्लवित हो सकेगी-इसे उपन्यास के मान्यवर भी समझ रहे हैंI वे कहते हैं-"शिक्षित बनो, संगठित बनोI संगठित होने से सत्ता मिलेगीI तब, जो लोग आज आप से लात-जूते से नीचे बात नहीं करते वही आपके जूते की फीते खोलने के लिए लपकेंगेI"(18) ('अगम बहै दरियाव', पृष्ठ-217)I

उपन्यास 'अगम बहै दरियाव' की जो मूल समस्या-किसानों की है, उस समस्या से निज़ात दिलाने के लिए उपन्यासकार ने जो सुझाव सुझाए हैं, वह विचारणीय हैI उपन्यास में विद्रोही जी के हवाले से जो सरकार से मांग रखी गई है, वह मांग किसानों को न्यायोचित हक़ दिलाने में एक कदम साबित हो सकती है-"हम मांग करते हैं कि एक निर्धारित सीमा से नीचे किसान की जमीन नीलाम न करने का कानून बनेI उतनी न्यूनतम जमीन उस किसान परिवार के भरण-पोषण के लिए छोड़ दी जाए, जितनी परिवार के जिंदा रहने के लिए जरूरी है, ताकि फिर किसी किसान को फांसी के फंदे पर न झूलना पड़ेI"(19) (उक्त, पृष्ठ-577)I बैताली काका और तूफानी के बीच संवाद से दुनिया बदली जाने वाली जिस तस्वीर से हमारा परिचय उपन्यास कराता है, वह भी बड़ा विचारणीय हैI "काका, अब समय काटने वाला नहीं, समय बदलने वाला खेला खेलने की जरूरत हैI क्या मतलब? तूफानी बैताली काका को संबोधित करते हुए कहता है- अब जंगू की बहादुरी से काम नहीं चलने वालाI दुनिया बहुत ख़राब हो चुकी हैI जंगू के हाथ इतने बड़े नहीं हैं कि दुनिया को ख़राब करने वाले शैतानों तक पहुँच सकेंI खुद हमारे रहनुमा शैतानों से हाथ मिला चुके हैंI अब जरूरत है कि दुनिया को आमूल-चूल बदल दिया जाएI बैताली थोड़ी देर तक तूफानी का मुँह ताकते रह जाते हैं फिर कहते हैं- इससे अच्छी बात क्या हो सकती है, बच्चा! इतनी ख़राब तो दुनिया कभी नहीं रहीI दुनिया बदलने वाला खेला दीजिए तो वही खेला जाएI"(20) (उक्त, पृष्ठ-585)I उपन्यास 'फांस' में किसानों द्वारा किए जा रहे आत्महत्या का जो समाधान उपन्यासकार ने बताया है, वह विचारणीय है। "डिस्पैरिटी मिटाओ, बीज बदलो, खाद बदलो, पशुधन जोड़ो, कम्पोस्ट लाओ, कीटनाशक बदलो, जो ज़हर फैल रहा है माटी-पानी खून में आदमी बदलो, आदमी! बाज़ार को अपने कब्जे में करो, को-ऑपरेटिव जोड़ों, कर्ज बंद करो, दारू बंद करो, फिजूलखर्ची बंद करो।"(21) ('फांस', पृष्ठ संख्या- 188)। दुनिया बदलने वाली जिस खेला की ओर उपन्यासकार ने ध्यान दिलाया है, वह हकीक़त में खेला प्रचलन में नहीं हैI उपन्यासकार ने अपनी तरफ से यह खेला गढ़ने की कोशिश की है, जिसकी जमीनी हकीकत कितनी हो पाएगी-यह तो भविष्य के गर्त्त में छुपा जान पड़ता हैI होगी भी या नहीं-यह विचारणीय हैI

उपन्यासकार का दुनिया में इंसानों के बराबर होने की चिंता एक बहुत जायज और वाजिब चिंता हैI जाति,धर्म के नामोनिशान को एक ओर मिटा देने वाली बात चाहे जितनी लोमहर्षक लगे, पर पूरे उपन्यास में बिरादरी की सरकार को स्थापित होने और उसे

बनाए रखे जाने की चिंता उपन्यास में सुझाए गए सुझावों के नजरिए से बड़ा विचारणीय और प्रश्नीय हैI हमारी बिरादरी की सरकार संबंधी बात उपन्यासकार द्वारा जगह-जगह पर की गयी हैI यह जाति,धर्म के नामोनिशान के मिटाए जाने की चिंता का विरोधाभाषी जान पड़ता हैI "तुम्हारी बिरादरी की मुख्यमंत्री ने सन 1995 में ही कानून पास कर दिया था कि ग्रामसभा की जमीन पर किसी दलित का कब्ज़ा है तो उसे बेदखल नहीं किया जा सकताI"(22) ('अगम बहै दरियाव', पृष्ठ-584)I उपन्यास के 'कहन' पर यदि विचार किया जाए तो यह ढंग उपन्यास में जबर्दस्त जान पड़ता हैI पाठकों को कथा-प्रवाह में बहा ले जाने की शक्ति भी रखता है, पर कथ्य में जो विस्तार है-वह कोई नई बात नहीं कहता दिखाई देता हैI शिवमूर्ति जैसे वरिष्ठ कथाकार से यह सहजतया अपेक्षा की जाती है कि वह कोई नयी बात उपन्यास में पाठकों के समक्ष रखेंगेI अंग्रेजी शासनकाल में जमींदारों के अत्याचारों से लेकर उदारीकरण से उपजने वाली स्थितियों का जिक्र और उसका चित्रण मात्र ही उपन्यासकार से अपेक्षित नहीं हैI कोई नई बात, नए सूत्र को ढूँढ़ने वाले पाठक को 586 पृष्ठों में विस्तारित इस उपन्यास से निराशा ही हाथ लग सकती हैI

'माटी-राग' उपन्यास में चित्रित इन पंक्तियों के हवाले से कहा जाना समीचीन होगा कि "दिल चाहता है कि निज़ाम-ए-कुहन बदल डालूं,

मगर यह बात फकत मेरे बस की बात नहीं,

उठो, बढ़ो, दुनिया के आम इंसानों,

यह सबकी बात है, दो-चार-दस की बात नहीं।"(23)

संदर्भ:

1 शिवमूर्ति- 'अगम बहै दरियाव', राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2023,पृष्ठ संख्या-31

2 उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या- 33

3 हरियश राय- 'माटी-राग', वाणी प्रकाशन, पेपरबैक पहला संस्करण -2024, पृष्ठ संख्या- 169

4 शिवमूर्ति- ' अगम बहै दरियाव', पृष्ठ संख्या- 40

5 उक्त, पृष्ठ संख्या- 363

6 उक्त, पृष्ठ संख्या- 498

7 संजीव- 'फांस', वाणी प्रकाशन, द्वितीय संस्करण-2016, पृष्ठ संख्या- 44

8 गीतांजलि श्री- 'रेत समाधि', राजकमल प्रकाशन, पेपरबैक नौवां संस्करण-2022, पृष्ठ संख्या- 56

9 शिवमूर्ति- 'अगम बहै दरियाव', पृष्ठ संख्या- 89

10 उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या- 340

11 उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या- 443

12 उपर्युक्त

13 उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या- 535

14 उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या- 417

15 हरियश राय- 'माटी-राग', पृष्ठ संख्या- 153

16 शिवमूर्ति- 'अगम बहै दरियाव', पृष्ठ संख्या- 129

17 संजीव- 'फांस', पृष्ठ संख्या- 74

18 शिवमूर्ति - 'अगम बहै दरियाव', पृष्ठ संख्या- 217

19 उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या- 577

20 उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या- 585

21 संजीव- 'फांस', पृष्ठ संख्या- 188

22 शिवमूर्ति- 'अगम बहै दरियाव', पृष्ठ संख्या- 584

23 हरियश राय- 'माटी-राग', पृष्ठ संख्या- 86 पर उद्धृत।

पत्राचार का पता: हरिदेवेंद्रम कॉलोनी, फ्लैट नंबर: बी-3,

गांधीनगर, अम्बिकापुर, जिला- सरगुजा, पिन- 497001 (छत्तीसगढ़)।